

[2009] 3 एस.सी.आर. 85

शकुंतला देवी और अन्य

बनाम

चमरू महतो और एक अन्य

(2009 की आपराधिक अपील संख्या 258)

10 फरवरी, 2009

[अल्टिमस कबीर और साइरिएक जोसेफ, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 145(6) - धारा 145(4) के तहत पारित आदेश के कार्यान्वयन के लिए आवेदन - परिसीमा अवधि - निर्णय: परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137, अवशिष्ट प्रावधान होने के कारण, लागू होगा और चूंकि आवेदन तीन वर्षों के बाद दायर किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने इसे परिसीमा द्वारा वर्जित माना- विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होती है - परिसीमा अधिनियम, 1963 - अनुसूची - अनुच्छेद 137 - विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धारा 6।

धारा 397(3) और 482 - पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को अपास्त करने की उच्च न्यायालय की शक्ति - निर्णीत: सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण में हारने वाले वादी के लिए उच्च न्यायालय के द्वार पूरी तरह से बंद नहीं हैं और विशेष मामलों में धारा 397(3) के तहत निषेध हटाया जा सकता है - धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति धारा 397(3) के तहत निषेध के अधीन नहीं है।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 145 के तहत अपीलकर्ताओं के पूर्वज द्वारा दायर एक आवेदन पर, जिसमें उन्होंने कहा कि उत्तरदाता संख्या 1 ने उन्हें विवादित भूमि से आवेदन के दो महीने के भीतर बेदखल कर दिया था, कार्यकारी दंडाधिकारी ने अपने दिनांक 7.10.1994 के आदेश द्वारा अपीलकर्ताओं को विवादित भूमि पर कब्जा घोषित कर दिया। दिनांक 12.11.1997 को अपीलकर्ताओं ने दिनांक 7.10.1994 के आदेश के अनुसरण में कब्जे की बहाली के लिए एक और आवेदन दायर किया। दंडाधिकारी ने अपीलकर्ताओं के पक्ष में

कब्जे की बहाली का निर्देश दिया। उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण याचिका को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने खारिज कर दिया। उत्तरदाता संख्या 1 की याचिका पर, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों को अपास्त कर दिया।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के विशिष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका स्वीकार्य नहीं थी; कि उच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 और परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों की गलत व्याख्या की और संहिता की धारा 145(6) के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन को परिसीमा द्वारा वर्जित मानने में गलती की।

अपील खारिज करते हुए न्यायालय ने

निर्णय दिया: 1.1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 में उप-धारा (3) को शामिल करने का उद्देश्य तुच्छ मुकदमेबाजी से बचने के लिए दूसरी पुनरीक्षण याचिका को रोकना था, लेकिन साथ ही, सत्र न्यायाधीश के समक्ष हारने वाले वादी के लिए उच्च न्यायालय के द्वार पूरी तरह से बंद नहीं थे और विशेष मामलों में धारा 397(3) के तहत रोक हटाई जा सकती थी। धारा 482 के तहत याचिका पर सुनवाई करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के तहत निषेध के अधीन नहीं थी और उचित मामलों में इसका प्रयोग किया जा सकता था। [कंडिका 17] [95-बी-सी]

राजाथी बनाम सी. गणेशन (1999) 6 एससीसी 326 और कृष्णन और एक अन्य बनाम कृष्णावेनी और एक अन्य (1997) 4 एससीसी 241, संदर्भित।

2.1. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों को उच्च न्यायालय द्वारा गलत तरीके से लागू किया गया था, यह मानते हुए कि अपीलकर्ताओं को विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 में दिए गए प्रावधान के अनुसार, बेदखली की तारीख से छह महीने के भीतर संहिता की धारा 145(6) के तहत आदेश के लिए आना चाहिए था। उक्त अधिनियम धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होता है। [कंडिका 18] [95-जी]

2.2. जहां तक दं.प्र.सं. की धारा 145(4) के तहत पारित आदेश के कार्यान्वयन हेतु आवेदन करने का संबंध है, चूंकि कोई परिसीमा अवधि निर्धारित नहीं है, इसलिए इसे परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 के अवशिष्ट प्रावधान के तहत आदेश की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए था। विलंब के कारण के संबंध में भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इसलिए, भले ही उच्च न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों को मामले के तथ्यों पर लागू करने में गलत था; उसने परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के आवेदन के संबंध में सही दृष्टिकोण अपनाया है, (क्योंकि इसके तहत रोक को टाला नहीं जा सकता) और अपीलकर्ताओं द्वारा तीन वर्ष से अधिक समय पहले की गई घोषणा के अनुसार कब्जे में बहाल किए जाने हेतु किया गया आवेदन सही ढंग से खारिज कर दिया गया है। [कंडिका 21 और 22] [97-ई; 98-ए-बी]

खुदीराम मंडल बनाम जीतेंद्र नाथ और एक अन्य. ए.आई.आर. 1952 कलकत्ता 713, संदर्भित।

नजीर संदर्भ:

(1999) 6 एसएससी 326 कंडिका 8 में संदर्भित

(1997) 4 एससीसी 241 कंडिका 9 में संदर्भित

एआईआर 1952 कलकत्ता 713 कंडिका 12 में संदर्भित

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2009 की आपराधिक अपील संख्या 258

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 5.1.2007 के अंतिम निर्णय एवं आदेश से, 2005 की आपराधिक विविध संख्या 15309 में।

अपीलकर्ताओं की ओर से श्री एस.बी. सान्याल, श्री के.डी. प्रसाद, श्री विशाल प्रसाद और श्री सतीश विग उपस्थित हुए।

उत्तरदाताओं की ओर से श्री नरेंद्र कुमार, श्री वी. बालाजी, श्री एम.के. सिन्हा, श्री पारेख ठाकुर, श्री गोपाल सिंह और श्री चंदन कुमार उपस्थित हुए।

न्यायालय का निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति श्री अल्लमस कबीर द्वारा सुनाया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 5.1.2007 को पारित आदेश के विरुद्ध है, जिसमें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-सह-त्वरित न्यायालय संख्या 5, खगड़िया द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 74/2003 में दिनांक 6.1.2006 को पारित आदेश को अपास्त कर दिया गया था, जिसमें अनुमंडल पदाधिकारी, खगड़िया द्वारा विविध मामला संख्या 20(एम)2/97 में दिनांक 2.5.2003 को पारित आदेश की पुष्टि की गई थी, जिसमें विवादित भूमि का कब्जा उत्तरदाता को बहाल करने का निर्देश दिया गया था।

3. अपीलकर्ताओं के पूर्वज, दयानंद प्रसाद ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे आगे 'संहिता' कहा गया है) की धारा 145 के तहत मामला संख्या 455(एम)/86 में *अन्य बातों के साथ-साथ* खाता संख्या 725 के अंतर्गत प्लॉट संख्या 3580 (14 कट्ठा 4 धुर) में कब्जे की बहाली के लिए आवेदन दायर किया, इस आधार पर कि याचिका दायर करने के दो महीने के भीतर उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा उन्हें जबरन बेदखल कर दिया गया था।

4. उक्त कार्यवाही में दोनों पक्षों ने कारण बताते हुए अपने-अपने उत्तर दाखिल किए और साक्ष्य प्रस्तुत किए, जिसके बाद कार्यकारी दंडाधिकारी ने अपने दिनांक 7.10.1994 के आदेश द्वारा विवादित भूमि पर अपीलकर्ताओं का कब्जा घोषित कर दिया। विद्वान दंडाधिकारी ने संहिता की धारा 145(4) के तहत दिनांक 7.10.1994 को अपना आदेश पारित करते हुए निम्नलिखित घोषणा की:-

“.....अतः, दोनों पक्षों के गवाहों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने और दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों का अवलोकन करने के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रथम पक्ष द्वारा बताए गए तथ्य सत्य हैं और अतः विवाद के पूर्व से ही प्रथम पक्ष का कब्जा घोषित किया जाता है। यह भी घोषित किया जाता

है कि प्रथम पक्ष विधिवत बेदखल किए जाने तक विवादित भूमि पर कब्जे का हकदार है।" (जोर दिया गया)

5. मूल याचिकाकर्ता दयानंद प्रसाद, जो अपीलकर्ता संख्या 1 के पति और अपीलकर्ता संख्या 2 और 3 के पिता थे, का 1995 में निधन हो गया। नवंबर 1997 में, अपीलकर्ताओं ने अनुमंडल पदाधिकारी, खगड़िया के समक्ष विविध मामला संख्या 20(एम)2/97 दायर किया, जिसमें कार्यकारी दंडाधिकारी के दिनांक 7.10.1994 के आदेश के अनुसार कब्जे की बहाली की मांग की गई थी। संहिता की धारा 145(4) के तहत उक्त विविध मामले को स्वीकार करते हुए, अनुमंडल पदाधिकारी, खगड़िया ने दिनांक 2.5.2003 को संहिता की धारा 145(6) के तहत एक आदेश पारित किया, जिसमें प्रश्नगत भूमि का कब्जा अपीलकर्ताओं के पक्ष में बहाल करने का निर्देश दिया गया।

6. 26 मई, 2003 को उत्तरदाता ने खगड़िया के माननीय सत्र न्यायाधीश के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 74 दायर की, जिसमें अनुमंडल पदाधिकारी द्वारा दिनांक 2.5.2003 को संहिता की धारा 145(6) के तहत पारित आदेश को चुनौती दी गई थी। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-सह एफ.टी.सी. संख्या 5, खगड़िया ने आपराधिक पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी और अनुमंडल पदाधिकारी, खगड़िया के आदेश की पुष्टि की। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के उक्त आदेश के विरुद्ध उत्तरदाता ने आपराधिक विविध मामला संख्या 15309/2005 पटना उच्च न्यायालय में दायर किया, जिसने उक्त विविध मामले को स्वीकार कर लिया और अनुमंडल पदाधिकारी और सत्र न्यायाधीश, खगड़िया द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया। पटना उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश का दिनांक 05.01.2007 का उक्त आदेश इस अपील में चुनौती का विषय है।

7. अपील के समर्थन में उपस्थित श्री एस.बी. सान्याल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने सर्वप्रथम यह तर्क दिया कि संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के विशिष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, उत्तरदाता की ओर से पटना उच्च न्यायालय में दायर पुनरीक्षण याचिका

संधारणीय नहीं थी। श्री सान्याल ने यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का कथित रूप से प्रयोग करते हुए, दूसरी पुनरीक्षण याचिका पर विचार करने में त्रुटिपूर्ण क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया, जो संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के अंतर्गत वर्जित थी।

8. अपने तर्क के समर्थन में, श्री सान्याल ने *राजथी बनाम सी. गणेशन* ((1999) 6 एससीसी 326) मामले में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया। उक्त निर्णय, संहिता की धारा 125 के तहत कार्यवाही के संबंध में दिया गया था। उक्त याचिका स्वीकार किए जाने पर, पति ने सत्र न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसने पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी और दंडाधिकारी के आदेश की पुष्टि की। इसके बाद पति ने उच्च न्यायालय में संहिता की धारा 482 के तहत याचिका दायर की, जिसे एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्वीकार कर लिया और अपने आक्षेपित आदेश द्वारा न्यायिक दंडाधिकारी और सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया और पत्नी के भरण-पोषण के दावे को खारिज कर दिया। विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से मामला इस न्यायालय में लाए जाने पर, इस न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का गलत तरीके से प्रयोग किया था, जो शक्तियां संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के तहत द्वितीय पुनरीक्षण याचिका का विकल्प नहीं थीं। इस न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि यह तथ्य कि उच्च न्यायालय को प्रदत्त अंतर्निहित शक्तियां व्यापक हैं, इसका अर्थ यह होगा कि ये शक्तियां सीमित हैं और इनका प्रयोग केवल कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर ही किया जा सकता है।

9. उपरोक्त के अतिरिक्त, श्री सान्याल ने इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा *कृष्णन और एक अन्य बनाम कृष्णावेनी और एक अन्य* [(1997) 4 एससीसी 241] के निर्णय पर भी अवलंबन किया, जिसमें इस न्यायालय ने यह माना था कि संहिता की धारा 397(3) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, सत्र न्यायालय द्वारा प्रथम पुनरीक्षण याचिका

खारिज किए जाने के बाद उच्च न्यायालय में द्वितीय पुनरीक्षण याचिका वर्जित है। उपरोक्त निर्णय देते हुए, इस न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि उक्त निषेध के बावजूद, संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति अभी भी उपलब्ध है, लेकिन ऐसी शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए ताकि प्रक्रिया की अनावश्यक बहुलता, मुकदमे में अनावश्यक देरी और कार्यवाही के लंबे समय तक चलने से बचा जा सके। वास्तव में, इस निर्णय में व्यक्त भावना का उल्लेख इस न्यायालय द्वारा बाद के निर्णयों में भी किया गया है और उस पर अवलंबन किया गया है, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

10. श्री सान्याल ने आगे कहा कि उच्च न्यायालय ने उन मामलों पर विचार करने में गलती की है जिनका इस मामले के तथ्यों से कोई संबंध नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम और परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों की पूरी तरह से गलत व्याख्या के आधार पर उच्च न्यायालय ने अपर सत्र न्यायाधीश, खगड़िया द्वारा दिनांक 6.1.2006 को पारित आदेश को अपास्त करने के लिए उत्तरदाता के आवेदन को स्वीकार कर लिया। श्री सान्याल ने तर्क दिया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 4 स्पष्ट करती है कि अधिनियम के प्रावधान केवल दीवानी मामलों में लागू होंगे, न कि आपराधिक कार्यवाही में। उन्होंने तर्क दिया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों का गलत प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय ने इसकी धारा 6 पर अवलंबन किया, जिसमें छह महीने की अवधि निर्धारित है, जिसके अंतर्गत गलत तरीके से बेदखल किए गए व्यक्ति कब्जे की बहाली के लिए मुकदमा दायर कर सकते हैं, जिसका निपटारा संक्षिप्त तरीके से किया जाना था। उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर भी ध्यान दिया कि यदि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 को ध्यान में रखा जाए, तो न्यायालय के आदेश को लागू करने की परिसीमा अवधि तीन वर्ष होगी और चूंकि दंडाधिकारी के दिनांक 7.10.1994 के आदेश को लागू करने के लिए आवेदन तीन वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद दिनांक 12.11.1997

को दायर किया गया था, इसलिए कार्यवाही और विद्वान दंडाधिकारी का आदेश क्षेत्राधिकार के बिना था।

11. श्री सान्याल ने निवेदन किया कि न तो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधान और न ही परिसीमा अधिनियम के प्रावधान इस मामले के तथ्यों पर लागू होते हैं और अपीलकर्ताओं का मामला संहिता के प्रावधानों द्वारा ही शासित होगा तथा धारा 145(4) या 145(6) के अंतर्गत कहीं भी संहिता की धारा 145(4) के तहत पारित आदेश को लागू करने के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है। श्री सान्याल के अनुसार, संहिता की धारा 145(4) का प्रावधान यह इंगित या निर्धारित नहीं करता है कि कब्जे की बहाली का आदेश धारा 145(4) के तहत पारित आदेश में ही शामिल किया जाना चाहिए। यह निवेदन किया गया कि धारा 145(4) के तहत घोषणा किए जाने के बाद संहिता की धारा 145(6) के तहत आदेश पारित किया जा सकता था। श्री सान्याल ने तर्क दिया कि संहिता की धारा 145(4) के तहत आदेश पारित होने के बाद अपीलकर्ताओं ने मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के कई प्रयास किए और अंततः, जब इस दिशा में सभी प्रयास विफल हो गए, तो अपीलकर्ताओं को कार्यकारी दंडाधिकारी से धारा 145(6) के तहत आदेश पारित करने के लिए आवेदन करने के लिए विवश होना पड़ा, जिसमें अपीलकर्ताओं के पक्ष में कब्जे की बहाली का निर्देश दिया गया था। श्री सान्याल के अनुसार, चूंकि परिसीमा अधिनियम के प्रावधान अपीलकर्ताओं के मामले पर लागू नहीं होंगे, इसलिए उसमें निर्धारित तीन वर्ष की समय सीमा उत्तरदाता के लिए किसी काम की नहीं होगी और उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत निर्णय देकर गलती की है।

12. अपने उक्त तर्कों के समर्थन में, श्री सान्याल ने सर्वप्रथम कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक खंडपीठ के *खुदीराम मंडल बनाम जितेंद्र नाथ और एक अन्य* (ए.आई.आर. 1952 कलकत्ता 713) मामले में निर्णय का संदर्भ दिया, जिसमें संहिता की धारा 145 के अंतर्गत एक समान परिस्थिति पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह माना कि यदि किसी

मामले में दंडाधिकारी किसी व्यक्ति को कब्जे का हकदार घोषित करता है, तो वह पक्षकार को कब्जा वापस दिलाने का भी हकदार है, और यह आवश्यक नहीं है कि वह एक ही आदेश द्वारा ऐसा करे तथा उसके लिए यह विकल्प है कि वह बाद की तिथि पर कब्जे की बहाली के लिए एक और आदेश पारित करे। न्यायमूर्ति सिन्हा के सहमति वाले निर्णय में आगे यह टिप्पणी की गई है:

“दूसरे मामले में, यह स्पष्ट है कि आगे और अनुतोष की आवश्यकता हो सकती है। किसी पक्ष के कब्जे के अधिकार की मात्र घोषणा करने से उसे वास्तविक कब्जा नहीं मिल सकता है और अन्य पक्षों को उसके कब्जे में बाधा डालने से रोकने का आदेश तब तक अर्थहीन होगा जब तक उसे ऐसा कब्जा वापस नहीं मिल जाता। इसी कारण 1923 के संशोधन ने दंडाधिकारी को कब्जा बहाल करने का अधिकार दिया। दूसरी ओर, एक पक्ष घोषणा और निषेधाज्ञा के आदेश से संतुष्ट हो सकता है क्योंकि दूसरा पक्ष बिना किसी और परेशानी के कब्जा छोड़ सकता है या मुकदमा दायर करने के लिए विवश हो जाता है, या कई अन्य कारणों से जिन पर हमें अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मुझे धारा 145(6) में ऐसा कुछ नहीं मिलता जो यह अनिवार्य बनाता हो कि कब्जे की बहाली का आदेश मूल आदेश का अभिन्न अंग हो और मूल आदेश के साथ ही पारित किया जाए। अंतिम आदेश अनुसूची V (प्रपत्र 22) में दिए गए प्रारूप में होगा और बाद में, जब कोई पक्ष कब्जा प्राप्त करने में असमर्थ होता है, तो वह उप-धारा (6) के अंतिम भाग के तहत कार्रवाई करने और उसे कब्जा वापस दिलाने के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकता है। यह एक प्रकार का सहायक आदेश है और यदि निष्पादन की प्रकृति में सादृश्य की अनुमति दी जाए तो।”

13. श्री सान्याल ने इस बात पर विराम दिया कि चूंकि उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में ऐसी कोई विशेष परिस्थितियाँ नहीं बताई गई थीं, जिनके कारण संहिता की धारा

482 के तहत उसकी शक्तियों का प्रयोग आवश्यक हो, इसलिए संहिता की धारा 397(3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध के बावजूद, इसके तहत क्षेत्राधिकार ग्रहण करना क्षेत्राधिकार से बाहर था और इससे पारित आदेश अमान्य हो गया। इसके अलावा, जिन मापदंडों के आधार पर उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन को स्वीकार किया था, वे भी पूरी तरह से गलत थे और इसलिए उच्च न्यायालय का निर्णय संधारणीय नहीं हो सकता।

14. श्री सान्याल के तर्कों का, उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री नरेंद्र कुमार ने कड़ा विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि कार्यकारी दंडाधिकारी द्वारा संहिता की धारा 145 के तहत क्षेत्राधिकार ग्रहण करना ही त्रुटिपूर्ण था, क्योंकि आदेश में यह दर्ज नहीं है कि शांति भंग होने की कोई आशंका थी जिसके आधार पर धारा 145 दं.प्र.सं. लागू की जा सके। उन्होंने बताया कि शांति भंग होने की किसी भी संभावना के बिना दीवानी प्रकृति के विवाद के आधार पर धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत आदेश नहीं दिया जा सकता। वास्तव में, शांति भंग होने की संभावना संहिता की धारा 145(1) के तहत क्षेत्राधिकार लागू करने के लिए *अनिवार्य* है और ऐसी आशंका के अभाव में, अपीलकर्ताओं को दीवानी कार्रवाई का सहारा लेना चाहिए था, न कि संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही के माध्यम से दंडाधिकारी के पास जाना चाहिए था। इस संबंध में उन्होंने यह भी निवेदन किया कि दंडाधिकारी द्वारा इस आशय का कोई सकारात्मक निष्कर्ष न होने पर कि प्रथम पक्ष को पुलिस अधिकारी की प्रतिवेदन या अन्य सूचना प्राप्त होने की तिथि से ठीक दो महीने पहले जबरन और अवैध रूप से बेदखल किया गया था, दंडाधिकारी ऐसा आदेश पारित नहीं कर सकता था जिसमें प्रथम पक्ष को संहिता की धारा 145 की उप-धारा (6) के तहत विधिवत बेदखल किए जाने तक प्रश्नगत संपत्ति पर कब्जे का हकदार घोषित किया गया हो। उन्होंने निवेदन किया कि संहिता की धारा 145 की उप-धारा (4) के तहत प्रथम पक्ष को कब्जे में घोषित करने वाले मूल आदेश की तिथि से तीन वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद दंडाधिकारी द्वारा ऐसा आदेश नहीं दिया जाना चाहिए था। वास्तव में, उन्होंने यह भी निवेदन किया कि

दंडाधिकारी का कार्यवाहक बन चुके थे और उनके पास आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था।

15. श्री नरेंद्र कुमार ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाता विवादित संपत्ति पर धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू होने से बहुत पहले से निरंतर कब्जे में था, जो कि अपीलकर्ताओं की याचिका से भी स्पष्ट है। उन्होंने बताया कि अपील में यह स्वीकार किया गया है कि उत्तरदाता मकान का निर्माण कर रहा था और जमीन पर रह भी रहा था।

16. इसके बाद उन्होंने यह तर्क दिया कि श्री सान्याल द्वारा अवलंबित *दयानंद* मामले (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय को वास्तव में *कृष्णन* मामले (उपरोक्त) में खारिज कर दिया गया था, और इसलिए दयानंद मामले के फैसले पर अवलंबन करना उचित नहीं है। श्री नरेंद्र कुमार ने तर्क दिया कि दयानंद मामले में अपने पूर्ववर्ती निर्णय पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने *कृष्णन* मामले (उपरोक्त) में भी यह टिप्पणी की थी कि संहिता की धारा 397(3) के निषेध के बावजूद, धारा 482 के तहत परिकल्पित राहत अभी भी उपलब्ध है, हालांकि इसका प्रयोग संयमित रूप से किया जाना चाहिए। श्री नरेंद्र कुमार ने कहा कि उच्च न्यायालय ने पक्षों के बीच पूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का सही ढंग से प्रयोग किया है।

17. हमने संबंधित पक्षों की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और हमें *दयानंद* (उपरोक्त) और *कृष्णन* (उपरोक्त) दोनों मामलों में लिए गए रुख से भिन्न रुख अपनाने का कोई कारण नहीं दिखता। यह सर्वविदित है कि धारा 397 में उप-धारा (3) को शामिल करने का उद्देश्य दूसरी पुनरीक्षण याचिका को रोकना था ताकि तुच्छ मुकदमों से बचा जा सके, लेकिन साथ ही, सत्र न्यायाधीश के समक्ष हारने वाले वादी के लिए उच्च न्यायालय के द्वार पूरी तरह से बंद नहीं थे और विशेष मामलों में धारा 397(3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध को हटाया जा सकता था। दूसरे शब्दों में, धारा 482 के तहत याचिका पर सुनवाई करने की उच्च न्यायालय की शक्ति संहिता की धारा 397 की उप-धारा (3) के

तहत निषेध के अधीन नहीं थी और उचित मामलों में इसका प्रयोग किया जा सकता था। श्री सान्याल का यह तर्क कि संहिता की धारा 397(3) के तहत पूर्ण निषेध है, जिसके तहत उच्च न्यायालय धारा 482 के तहत आवेदन पर विचार करने से वंचित है, इसलिए हमें स्वीकार्य नहीं है।

18. तथ्यात्मक पहलू पर, दंडाधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता विवादित भूखंड पर कब्जे के हकदार थे। यह सत्य है कि संहिता की धारा 145(4) के तहत ऐसी घोषणा करते समय, दंडाधिकारी यह निर्देश भी दे सकते थे कि अपीलकर्ताओं को उस भूखंड का कब्जा सौंप दिया जाए। अब जिस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित करने में सही निर्णय लिया था, जिसे सत्र न्यायाधीश ने इस आधार पर पुष्टि की थी कि अपीलकर्ताओं द्वारा संहिता की धारा 145(6) के तहत दायर आवेदन प्रथम दृष्टया परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत परिसीमा से और साथ ही विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के तहत वर्जित था। हम श्री सान्याल से सहमत हैं कि उच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों का गलत प्रयोग किया है, यह मानते हुए कि अपीलकर्ताओं को संहिता की धारा 145(6) के तहत आदेश के लिए बेदखली की तारीख से छह महीने के भीतर आना चाहिए था, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 6 में प्रावधान है, क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होता है।

19. हालांकि, उच्च न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के इस मामले के तथ्यों पर लागू होने के संबंध में सही दृष्टिकोण अपनाया है। यह अनुच्छेद एक अवशिष्ट प्रावधान है, जो तीन वर्ष की परिसीमा अवधि प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत किसी ऐसे आवेदन पर पारित आदेश को चुनौती दी जा सकती है, जिसके लिए तृतीय प्रभाग में कहीं और परिसीमा अवधि का प्रावधान नहीं है। हालांकि, संहिता की धारा 145 के तहत, जब भी कोई कार्यकारी दंडाधिकारी किसी पुलिस अधिकारी की प्रतिवेदन या अन्य जानकारी से संतुष्ट

होता है कि उसके स्थानीय क्षेत्राधिकार के भीतर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं के संबंध में शांति भंग करने की संभावना वाला कोई विवाद मौजूद है, तो वह लिखित में एक आदेश जारी करेगा, जिसमें उसकी संतुष्टि के आधार बताए जाएंगे, और विवाद से संबंधित पक्षों को विवाद के विषय पर वास्तविक कब्जे के संबंध में अपने-अपने दावों को निपटाने के उद्देश्य से उसके न्यायालय में उपस्थित होने के लिए कहा जाएगा। धारा 145 की उप-धारा (4) में यह प्रावधान है कि दंडाधिकारी, विवाद के विषय पर अधिकार के संबंध में किसी भी पक्षकार के दावे या गुण-दोष पर विचार किए बिना, उनके बयानों को पढ़कर और पक्षकारों की सुनवाई करके तथा प्रस्तुत साक्ष्यों को प्राप्त करने के बाद, यदि आवश्यक समझे तो अतिरिक्त साक्ष्य लेगा और यदि संभव हो तो यह निर्णय करेगा कि उप-धारा (1) के तहत उसके द्वारा दिए गए आदेश की तिथि को विवाद के विषय पर किस पक्षकार का कब्जा था। उप-धारा (4) का परंतुक यह प्रावधान करता है कि यदि दंडाधिकारी को यह प्रतीत होता है कि किसी पक्षकार को पुलिस अधिकारी की प्रतिवेदन या अन्य सूचना प्राप्त होने की तिथि से दो महीने पहले या उसके बाद तथा उप-धारा (1) के तहत उसके आदेश की तिथि से पहले बलपूर्वक और गलत तरीके से बेदखल किया गया था, तो वह बेदखल पक्षकार को ऐसा मान सकता है मानो वह उप-धारा (1) के तहत उसके आदेश की तिथि को कब्जे में था। उप-धारा (6) दंडाधिकारी को यह अधिकार देती है कि जब वह इस निर्णय पर पहुंचे कि विवाद के विषय पर किसी पक्ष का कब्जा है या उसे कब्जाधारी माना जाना चाहिए, तो वह ऐसा आदेश जारी कर सकता है जिसमें यह घोषित किया जाए कि विवादित विषय पर किसी पक्ष को विधिवत बेदखल किए जाने तक कब्जा प्राप्त रहेगा, और जब वह उप-धारा (4) के परंतुक के तहत कार्यवाही करे, तो वह बलपूर्वक और गलत तरीके से बेदखल किए गए पक्ष को कब्जे में वापस ला सकता है।

20. उत्तरदाताओं के अनुसार, परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के प्रावधान तब लागू हुए जब धारा 145 की उप-धारा (4) के प्रावधानों को लागू किए बिना, अपीलकर्ताओं ने

विवादित भूखंड का कब्जा तीन वर्ष की अवधि के बाद उन्हें सौंपे जाने के लिए आवेदन दायर किया, जबकि परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के तहत परिसीमा अवधि तीन वर्ष है। उच्च न्यायालय उक्त दलील से सहमत हुआ और तदनुसार उत्तरदाताओं द्वारा दायर आपराधिक विविध आवेदन को यह मानते हुए स्वीकार कर लिया कि कब्जे की बहाली का आदेश तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद दिया गया था, जो परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के अनुसार अनुमेय नहीं था।

21. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय ने धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने में त्रुटि की है, लेकिन धारा 145(4) दं.प्र.सं. के तहत पारित आदेश के कार्यान्वयन हेतु आवेदन करने के संबंध में, चूंकि कोई परिसीमा अवधि निर्धारित नहीं है, इसलिए इसे आदेश की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए था। जबकि धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में अंतिम आदेश 7 अक्टूबर, 1994 को पारित किया गया था, इसके कार्यान्वयन हेतु आवेदन 12 नवंबर, 1997 को किया गया था, जो परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के प्रावधानों के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि से परे था।

22. श्री सान्याल द्वारा उद्धृत निर्णय, उनके समर्थन में नहीं है, क्योंकि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि धारा 145(6) के तहत आवेदन उस संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है जिसके संबंध में पक्षकार को कब्जे का हकदार घोषित किया गया है। ऐसा आवेदन तब नहीं किया जा सकता जब बेदखल व्यक्ति ऐसा करना चाहे। इसी उद्देश्य से अनुच्छेद 137 का प्रयोग किया गया है, क्योंकि धारा 145 में ही कोई समयसीमा निर्धारित नहीं की गई है, जिससे यह संकेत मिले कि कब्जे का हकदार पाए गए पक्षकार को किस समय के भीतर कब्जा वापस दिलाया जा सकता है। इस प्रकार की देरी के कारण का भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इसलिए, भले ही उच्च न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के प्रावधानों को मामले के तथ्यों पर लागू करने में गलत था, परिसीमा

अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत रोक को टाला नहीं जा सकता और अपीलकर्ताओं द्वारा आवेदन किए जाने के तीन वर्ष से अधिक समय पहले की गई घोषणा के अनुसार कब्जे की बहाली के लिए किया गया आवेदन अस्वीकार किया जाना चाहिए।

23. इस स्थिति में अपील खारिज की जाती है।

आर.पी.

अपील खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।